काश्मीर शैवदर्शन में वाक्-तत्त्व

मणि शंकर द्विवेदी

कूट शब्द - आगमशास्त्र , प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी, वाक्, स्पन्दशास्त्र।

शोधसार - मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिस सार्थक मौखिक साधन को अपनाता है, वह भाषा कहलाती है। यद्यपि सङ्केत आदि के द्वारा भी कुछ भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है ; परन्तु अपने भावों को सूक्ष्म एवं स्पष्ट रूप में व्यक्त करने का साधन भाषा ही है। चिन्तन, मनन और विचार का साधन भी भाषा ही है। भाषा ही वह जीवन ज्योति है जो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करती है। मानव के विचार ही समाज के साथ उसका सम्पर्क स्थापित करते हैं। यह सम्पर्क भाषा के माध्यम से ही होता है। यदि मानव के पास भाषारूपी अमोघ अस्त्र न होता तो मनुष्य भी पशु-पक्षियों के तुल्य अपने भावों को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट करने में असमर्थ रहता। आचार्य भर्तृहरि ने शब्द की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं है जो शब्दानुगम के विना सम्भव हो। सम्पूर्ण ज्ञान शब्द से नित्य-संसृष्ट रूप में ही प्रतीत होता है-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ (वाक्यपदीय-१.१२३)

भाषारूपी इस दैवी अंश के द्वारा ही मनुष्य इस संसार का सर्वोत्तम जीव माना जाता है और अपने वाग्-व्यवहार द्वारा वह ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुए है। भाषा के कारण ही वह चर और अचर जगत् का स्वामी भी है। भाषा ही वह दिव्य ज्योति है जो मानव को ऋषि, देवता या विद्वान् बनाती है –

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥" (ऋग्वेद-१०.१२५.५)

भाषाचिन्तन की परम्परा अनादि काल से ही व्यवहृत है। वैदिक वाङ्मय में भाषा को वाक् तत्त्व से अभिहित कर वैदिक ऋषियों ने भाषा सम्बन्धी प्रत्येक पहलुओं पर विस्तृत विचार विमर्श किया है।
वेदों,ब्राह्मणों,आरण्यकों,उपनिषदों एवं निरुक्त,प्रातिशाख्य,शिक्षा आदि दर्शन ग्रन्थों में वाक्-तत्त्व का विवेचन हमें पूर्णरूप से प्राप्त होता है।

वाक्-तत्त्व विषयक विवेचन न केवल निगम परम्परा अपितु आगम परम्परा में भी सम्यक् रूप से प्राप्त होता है। इस परिप्रेक्ष्य में काश्मीर शैवदर्शन में प्रतिपादित वाक् तत्त्व विषयक विवेचन विशेष रूप से द्रष्टव्य है, जहाँ वाक् को चितिशक्ति, विमर्श, स्वातन्त्र्यशक्ति, परा वाक्, ऐश्वर्य आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से काश्मीर शैवदर्शन का दिग्दर्शन कर उसमें प्रतिपादित वाग्विषयक विवेचन को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

भारत में समानान्तर रूप से दो संस्कृतियाँ विकसित हुई हैं - वैदिक एवं तान्त्रिक। इन्हें निगम एवं आगम नामक अपर अभिधान से भी अभिहित किया जाता है। किसी भी सम्प्रदाय में साधना का द्वैविध्य देखने को मिलता है -बहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग

। भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में बहिरङ्ग साधना का प्रकाशक ग्रन्थ निगम अर्थात् वेद हैं और अन्तरङ्ग साधना का बोधक ग्रन्थ आगम अर्थात् तन्त्र हैं। हमारी संस्कृति जिस प्रकार निगम का आश्रयण करती है उसी प्रकार आगम का भी अवलम्बन करती है। अत: भारतीय संस्कृति को निगमागममूलक कहा गया है।

आगमों में शिव एवं शक्ति को केन्द्र में रखकर आगम परम्परा को आगे बढ़ाने वाले शैवागम की भारत में तीन विचारधाराएँ दृष्टिगोचर होती हैं :- (१) कर्णाटक का द्वैताद्वैतवादी वीरशैव (२) तमिलनाडु का द्वैतवादी शैव सिद्धान्त तथा (३) कश्मीर का अद्वैतवादी शैव सिद्धान्त।

कश्मीर का अद्वयवादी शैवसिद्धान्त ही काश्मीर शैवदर्शन के नाम से जाना जाता है। चूँकि शैवागम की इस अद्वैतवादी दार्शनिक विचारधारा का विकास कश्मीर में हुआ और इस दर्शन में उपलब्ध साहित्य के रचयिता प्राय: सभी कश्मीर निवासी हैं, अत: देश विशेष के नाम पर इसे काश्मीर शैव दर्शन के नाम से जाना जाता है।

प्रतिपादन की शैली के विकास के विचार से काश्मीर शैवदर्शन में आधारभूत उपलब्ध साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है- आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र एवं प्रत्यभिज्ञाशास्त्र।

आगमशास्त्र :- यह दैवीज्ञान माना जाता है जो कि गुरु-शिष्य परम्परा से चला आया है। स्वयं भगवान शिव आगमों में स्रष्टा एवं वक्ता कहे जाते हैं।[1] शैवागमों के अनुसार लोकानुग्रह के लिए श्रीकण्ठमूर्ति भगवान शिव ने इसका ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया था उसके पश्चात् शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से आगमों का ज्ञान जगत् में प्रचलित होता रहा।[2] काश्मीर शैवागमों में मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, स्वच्छन्दतन्त्र, विज्ञानभैरव, नेत्रतन्त्र, स्वायम्भुवतन्त्र, रुद्रयामलतन्त्र, नैश्वासतन्त्र, शिवसूत्र, आनन्दभैरव और उच्छुष्मभैरव मुख्य माने जाते हैं।

स्पन्दशास्त्र : - स्पन्दशास्त्र काश्मीर शैवदर्शन के साधनापक्ष से सम्बन्धित है। इसमें इस दर्शन के मुख्य सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। वसुगुप्त रचित स्पन्दकारिका जिसका अपर अभिधान स्पन्द सूत्र भी है इस शास्त्र का प्रतिनिधिग्रन्थ है। इस पर भट्टकल्लट व रामकण्ठ की स्पन्दविवृति, उत्पलवैष्णव की स्पन्दप्रदीपिका एवं प्रथमकारिका पर क्षेमराज का स्पन्दसन्दोह एवं स्पन्दनिर्णय नामक वृत्तियाँ लिखी गयी हैं।

प्रत्यभिज्ञाशास्त्र :- प्रत्यभिज्ञाशास्त्र शैवदर्शन का दर्शनशास्त्र है। यह शैवदर्शन के मुख्य सिद्धान्तों का मानव की तार्किक बुद्धि के लिए व्याख्या करता है। इसमें आगम के दार्शनिक पक्ष का प्रतिपादन हुआ है। इस शास्त्र का प्रतिनिधि ग्रन्थ सोमानन्द रचित शिवदृष्टि है। सोमानन्द के शिष्य उत्पलदेव ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा नामक एक ग्रन्थ की रचना की जो कारिका में निबद्ध है। यह इस शास्त्र का एक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी शास्त्र के आधार पर इस दर्शन का नाम प्रत्यभिज्ञादर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रन्थ पर अभिनवगुप्त के दो टीका-ग्रन्थ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी एवं ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी है। प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रत्यभिज्ञाहृदयम् है, जिसे अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमराज ने लिखा है। इसमें सम्पूर्ण प्रत्यभिज्ञादर्शन का सार समाहित है। अभिनवगुप्त ने १२ खण्डों में तन्त्रालोक एवं एक पृथक् ग्रन्थ तन्त्रसार लिखा है, जिसमें शैव दर्शन के सभी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन की एक लम्बी परम्परा रही है,जिसको पुष्पित-पल्लवित करने में आचार्य वसुगुप्त, भट्टकल्लट, सोमानन्द, उत्पलदेव, अभिनवगुप्त, क्षेमराज एवं वरदराज आदि का विशेष योगदान रहा है।

काश्मीर शैवदर्शन में वाक् का प्रत्यय एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। यह यहाँ के दर्शन में सत् का स्वरूपात्मक तत्त्व है, इसे चितिशक्ति, विमर्श, स्वातन्त्र्यशक्ति, परा वाक्, ऐश्वर्य आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है :-

चिति: प्रत्यवर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता। स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यम् तदैश्वर्यं परमात्मन: ॥

सा स्फुरता महासत्ता देशकालाविशेषिणी। सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिन: ॥[3]

---

[1] विज्ञानभैरव, विवृति, ५.७

[2] शिवदृष्टि - ७.१२२

[3] **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका- १.५.१३-१४**

काश्मीर शैवदर्शन में वाक्-तत्त्व का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इस दर्शन में अद्वैततत्त्व का नानात्व के रूप में जो भी विस्तार होता है वह विमर्शनदृष्टि ही घटित होता है तथा पुन: उस अद्वैत की ओर प्रत्यावर्तन का माध्यम भी यही विमर्श बनता है । वाक् इसी विमर्श का नामान्तर है । इनमें भेद मात्र यह ही है कि जहाँ विमर्श मात्र विचार या चेतना रूप है वहीं वाक् में मुखरता भी रहती है :-

"विमर्शस्य च संवेदनावलम्बित्वात् शब्दनरूपतास्वीकारेण विमर्शरूपताभिधानाय वाक्पदमु-पात्तम्" ।[4]

काश्मीर के इस अद्वैतवादी शैवदर्शन में वाक्-तत्त्व को परमसत् के स्वरूप में अनुस्यूत माना गया है जिसके कई कारण हैं[5] :- परम्परागत दृष्टि से वाक् तत्त्व परमतत्त्व का स्वभाव ही है, तभी प्राचीन ग्रन्थों में परमशिव अक्सर शब्दराशि कहा गया है । उसकी मन्त्ररूपता भी इसी वाक्-तत्त्व की अनुप्राणकता को दर्शाती है :-

"एवं शब्दनशरीरो मन्त्रात्मा हृदयाकाशे विमर्शरूपतया विपरिवर्तमान:, अत एव अनाहतशब्दवाच्यो नित्योदितो मन्त्र: ।"[6]

"इह तावत्परमेश्वर: शब्दराशि: । शक्तिरस्य भिन्नाभिन्नरूपा विचित्रा । मातृकादेवीवर्गाष्टकं पञ्चाशद्वर्णा: पञ्चाशद्रुद्रशक्तय: ।"

"पञ्चमन्त्रमहामूर्तिभगवान् । इति वदता भगवता तावदागमेषु शब्दनैकशरीरत्वं विमर्शनात्म-तया भगवत: प्रकाशवपुषोऽङ्गी कृतम् ।"[7]

द्वितीय, परमसत् के जिस पूर्ण स्वरूप की स्थापना वह करता है, वहाँ उस पूर्णता का संवाहक वाक्-तत्त्व को मानना अनिवार्य है । अन्यथा किसी बाह्य निमित्त को मानने से वह पूर्णता सिद्ध कर पाना संभव नही होगा । विमर्श रूप में जिसे कि परावाक् रूप से ही यह सम्प्रदाय सम्बोधित करता है, यह वाक् सारी अनेकता का स्रोत है और यह एक ही तत्त्व के बिना एकत्व से च्युत हुए नानात्व के आभासन में समर्थ बनाती है :-

अन्तर्विभाति सकलं जगदात्मनीह, यद्वद्विचित्ररचना मकुरान्तराले ।

बोध: परं निजविमर्शनसारयुक्त्या, विश्वं परामृशति नो मकुरस्तथा तु ॥[8]

तृतीय इस सम्प्रदाय के विकास पर भर्तृहरि के शब्दाद्वैत का पर्याप्त प्रभाव है ; अत: तान्त्रिक परिवेश से गृहीत इस धारणा को विकसित करने के लिए इस सम्प्रदाय के आचार्य, भर्तृहरि द्वारा प्रस्तुत दृष्टि का कई बार अनुसरण करते हैं ।

अभिनवगुप्त के अनुसार जो परमसत् के स्वरूप का विमर्शन करती है, वह वाक् है :-

"वक्ति स्वरूपं विमृशतीति वाक् ।"[9]**....."वक्ति विश्वम् अभिलपति प्रत्यवमर्शन इति च वाक् ।"**[10] अत: परमसत् का जो अनिवार्य स्वरूप है - प्रकाशविमर्शमयता, उसमें वाक् इसी विमर्श के प्रत्यय में अनुस्यूत घटक है :-

"परामर्शमयी विमर्शनलक्षणैव या कर्तृता सैव मन्त्राणामुत्पत्तिस्थितिलयस्थानत्वेन समाप्या-यनोपबृंहणादिकारित्वेन च मान्त्री महामन्त्रतनोश्च भगवत: सम्बन्धिनी शब्दनरूपा, न तु पाशवर्गमध्यपतिता कर्मेन्द्रियविशेषरूपा तत्कार्यशब्दरूपा वा वाक् ।"[11]

---

[4] ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग-१,पृष्ठ-१५

[5] उद्धृत, काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ, नवजीवन रस्तोगी, पृ०-६६ ।

[6] ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग-३, पृ० २८३ ।

[7] वही, भाग-२, पृ० १९५-९६ ।

[8] ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग-२, पृ० २२३ पर उद्धृत

[9] ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी,भाग-२, पृ० १५

[10] वही, भास्करी,भाग-१,पृष्ठ-२५३

[11] ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग-२, पृ०-१८७

सत् की प्रकाशात्मकता की प्रकल्पना को लेकर जो अस्तित्त्व व ज्ञान के स्तरों को जोड़ने की कोशिश की गयी है, उसमें मुख्य भूमिका यही वाक् तत्त्व निभाता है :- **"तद्वयं तिङन्तार्थ एव स्वातन्त्र्यात्मा विमर्श: प्रकाशाख्य अहेयं वपुर्बोधस्य या वाग्रूपता शब्दनशब्दयितृरूपता शाश्वती सङ्केतादिवत् ।"[12] ....."विमर्शेनैव हि प्रकाशस्य भावानां च स्वरूपव्यवस्था भवति तत्र प्रतिष्ठितस्पन्दरूपया प्रकाशव्यवस्था 'स्वभावमवभासस्य' इति न्यायेन विशेषस्पन्दरूपया भावव्यवस्थेति विभाग: ।"[13]**

काश्मीर शैव दर्शन में वाक् तत्त्व की मीमांसा तीन स्तरों पर प्राप्त होती है :- प्रथम उद्विकासात्मक सन्दर्भ में, द्वितीय स्थूल शब्द में एवं तृतीय आगम प्रमाण के सन्दर्भ में । वाक् के उद्विकास की चर्चा में वाक् के परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी रूपी चार प्ररूपों का विवरण मिलता है । इनमें से परा वाक् उत्पलदेव के अनुसार प्रकाशतत्त्व के अभिन्न अङ्ग विमर्श का ही अपर पर्याय है :-

"चिति: प्रत्यवर्शात्मा परा वाक् स्वरसोदिता । स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मन: ॥"[14]

वाक् की यह अवस्था परमेश्वर की अभिन्न शक्ति है जो कि सृष्टि-प्रसार व संकोच के दुर्घट व्यापार का स्रोत है । इसे विमर्शमय स्पन्दरूप से भी बतलाया गया है । परा वाक् में सारी सृष्टि असाङ्केतिक शाश्वत व अकृत्रिम संविद् रूप से स्थित है :-

"तेन संवित्तिकात्मैव मातृमानप्रमेयता । गृह्णती स्वप्रकाशत्वं स्वभावादेव भासते ॥

सा चान्त: स्थितमन्त्रात्मशब्दनामर्शसुन्दरा । अनपेक्षान्यविरहात्प्रमाणं स्वत एव हि ॥"[15]

आचार्य अभिनवगुप्त ने इस परा वाक् को अक्रमता को प्राप्त समस्त अभिधानरूप शब्दों का सार बतलाया है :-

"अक्रमतां प्राप्तं यत् नि:शेषं समस्तमभिधानानां शब्दानामभिधेयं विमृश्यमानं रूपं ग्राह्य-ग्राहकात्मकमुभयं तेन गर्भिणी तत्सर्वं क्रोडीकृत्य अवतिष्ठमाना न तु शक्तिमद्रूपपरम-शिवदशा इव अनुन्मिषितग्राह्यग्राहकादिवैचित्र्या अत एव भगवत: स्वाभोगं प्रति य आस्वादश्च-मत्कारो निजाभोगपरामर्शात्मा तन्मयी ।"[16]

तन्त्रालोक में अभिनवगुप्त ने कहा है कि परावाक् परिपूर्ण अहम् रूप प्रत्यवमर्श है जो कि स्वातन्त्र्य के कारण अपने में ही विभाग का अवभासन करती है । यह स्वात्मास्वाद-परामर्श है :-

"तस्य प्रत्यवर्मशो य: परिपूर्णोऽहमात्मक:। स स्वात्मनि स्वतन्त्रत्वाद्विभागमवभासयेत् ॥

विभागाभासने चास्य त्रिधा वपुरुदाहृतम् । पश्यन्ती मध्यमा स्थूला वैखरीत्यभिशब्दितम् ॥"[17]

वाक् की द्वितीय अवस्था पश्यन्ती है जो कि परा का प्रथम विवर्त है । इसको उन्मुखता की स्थिति से एकात्म कर सकते हैं । यह वह अवस्था है जिसमें भेद का आसूत्रण हो गया है पर अभी उल्लेखन नहीं हुआ है :-

"यथा परवाक्-तत्त्वे विभागहान्या विश्वं स्थितं पश्यन्त्यामासूत्रितभेदं मध्यमायामुन्मीलित-भेदं, वैखर्यां भिन्नपरामृश्यमानरूपतया स्फुटीभूतभेदावभासं....."[18]

यह अवस्था स्फुट भेद से शून्य होकर सारे भेदात्मक क्रमों की उपसंहृतावस्था है :-

---

[12] **वही**

[13] **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी,भास्करी,भाग-१, पृष्ठ-२६३**

[14] **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, १.५.१३**

[15] **मालिनीविजयवार्तिक, १.४.३३-३४**

[16] **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग-२, पृ०-१९**

[17] **तन्त्रालोक, ३.२३५-३६**

[18] **ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विवृतिविमर्शिनी, भाग-२, पृष्ठ १८९-९९**

"यथाह तत्र भवान् प्रतिसंहृतक्रमा तु सत्यपि भेदे समाविष्टक्रमशान्ति: पश्यन्ती ।"[19]

तंत्रालोक में इसे प्रथम नाद रूप कहा गया है :-

"तत्र या स्वरसन्दर्भसुभगा नादरूपिणी । सा स्थूला खलु पश्यन्ती वर्णाद्यप्रविभागत: ॥"[20]

वाक् की इस अवस्था की पश्यन्ती संज्ञा इसके अविरत दर्शन स्वभाव को बतलाती है जो कि प्रकाश के अप्रतिहत प्रकार को ही ध्वनित करती है :- **"पश्यन्ती इति अविरतदर्शनस्वभाव-त्वेन अप्रतिहतप्रकाशरूपत्वमिच्छाशक्ते: प्रकाशप्रसररूपत्वाभिधानाय उक्तम् ।"**[21]

वाक् के उद्विकास की तृतीयावस्था मध्यमा की है । इस अवस्था में भेदावस्था का उन्मीलन प्रारम्भ हो जाता है, अत: यहाँ इदन्ता का विमर्श ही प्रधान है । वाक् का यह स्तर यद्यपि श्रोत्रग्राह्य वर्णाभिव्यक्ति से रहित है पर मानासिक वर्णोच्चारणक्रम तो यहाँ विद्यमान रहता ही है अर्थात् मानसिक स्तर पर वेद्यवेदक प्रपञ्च तथा वाच्य-वाचक शब्दों का उदय घटित हो जाता है । फलत: यह अवस्था क्रममय कही गयी है । यहाँ सारी प्रक्रिया मन, बुद्धि, अहंकार रूप अन्त:करण के स्तर पर ही घटित होती है, अत: इसे सङ्कल्परूपा भी कहा गया है । यह मध्यमा भूमि विद्या, माया दोनो का स्पर्श करने वाली कही गयी है क्योंकि इस अवस्था में अभेद एवं भेद दोनों ही अवस्थित हैं ।[22] इस अवस्था को आचार्य अभिनवगुप्त कभी ज्ञानशक्ति से एकात्म करते हैं तो कभी क्रियाशक्ति से । वस्तुत: जब वह पश्यन्ती को इच्छाशक्तिरूपा कहते हैं[23] तब इसे ज्ञानशक्ति से एकात्म करते हैं[24] और जब पश्यन्ती को ज्ञानशक्तिरूपा कहते हैं[25] तो इसे क्रियाशक्ति से अभिन्न पाते हैं ।

वाक् के उद्विकास की चतुर्थ अवस्था वैखरी कहलाती है । यह वाक् के विकास का सबसे स्थूलरूप है जो कि सर्वजन-संवेद्य है । यहाँ प्राणक्रिया के माध्यम से वाक्-व्यापार पूर्ण स्फुटता को प्राप्त कर लेता है :-

"वैखरीति प्रसिद्धा वाक् ताल्वादिकरणव्यापारोपरूढास्फुरणतया क्रियाशक्तिरित्यध्यवसीयते ।"[26]

शैवागमों में वाक्-तत्त्व को इस जगत् का मूल मानकर जागतिक तत्त्वों को विविध वर्ण रूप इन परामर्शों से एकात्म किया गया है । आगमों के इस विचार को ही काश्मीर शैव दर्शन में विकसित करने का प्रयास किया गया है । परात्रिंशिका विवरण एवं तन्त्रालोक में अभिनवगुप्त ने अ से क्ष तक के वर्ण समुदाय के माध्यम से सारी जागतिक सृष्टि के प्रसार की व्याख्या करने का प्रयास किया है । इसे वे आक्षरी सृष्टि से अभिहित करते हैं । इस आक्षरी सृष्टि में सम्पूर्ण स्वरवर्ग बीजरूप तथा व्यञ्जनवर्ग योनिरूप है । दूसरे शब्दों में स्वरवर्ग शिव का तथा व्यञ्जनवर्ग शक्ति का प्रतिनिधि है :-

"बीजात्मनां स्वराणां वाचकत्वं योनिरूपाणां च व्यञ्जनानां वाच्यत्वं क्रमेण शिवशक्त्यात्मकत्वात् .....बीजमत्र शिव शक्तिर्योनिरित्यभिधीयते ।"[27]

---

[19] वही

[20] **तन्त्रालोक, ३.२३७.३८**

[21] **ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, भाग-२, पृ०-१८९**

[22] मध्यमाभूमिर्विद्यामायोभयस्पर्शिनी,
-ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी, भाग-२, पृ०-२५८

[23] 'प्रथम: पश्यन्तीशब्दवाच्य: इच्छालक्षण:'
- वही पृ० १६९

[24] 'यतस्ततश्चिन्तनशब्दवाच्या मध्यभवत्वात् मध्यमा ज्ञानशक्तिरूपा' –
वही, पृ०-१८८ ।

[25] 'पश्यन्तीशब्देन श्रीसदाशिवभूमिर्ज्ञानशक्तिस्वभावा उक्ता'
– वही, पृ० १९७ ।

[26] **महार्थमञ्जरी, पृ०-१२४**

[27] **परात्रिंशिकाविवरण, पृ० २३८-३९**

"बीजमत्र शिव: शक्तिर्योनिरित्यभिधीयते । वाचकत्वेन सर्वापि शम्भो: शक्तिश्च शप्यते ॥"[28]

स्वच्छन्दतन्त्र में सूक्ष्म एवं स्थूल रूप शब्द के दो प्रकारों का उल्लेख करते हुए षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषध इन सात स्वरों को तथा गान्धार मध्यम, एवं षड्ज इन तीन ग्रामों के साथ इक्कीस मूर्छनाओं और उञ्चास तानों को सुरमण्डल बतलाकर इन्हें सूक्ष्म शब्द कहा गया है :-

"षड्जाख्यर्षभगान्धारमध्यमा: पञ्चम: प्रिये । धैवतो निषधश्चैव स्वरा: सप्त प्रकीर्तिता: ॥

गान्धारे मध्यम: षड्जस्त्रयो ग्रामाश्च पार्वति । सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनाश्चैकविंशति: ॥

तान एकोनपञ्चाशदित्येतत् सुरमण्डलम् । सूक्ष्मशब्दा: स्मृता ध्येते चराचररवस्थिता: ॥"[29]

भेरी, पटह एवं शङ्ख से उत्पन्न, मृदङ्ग एवं पणव से उत्थित, वंशी और गोमुख का शब्द , मन्दल और मेढक की ध्वनि अनेक प्रकार के तन्त्रीवाद्य, करवाद्य, संयोगज शब्द, विभागज शब्द, काष्ठ, पत्थर और जल से उत्पन्न शब्द, अपभ्रंश, अनुनासिक, संस्कृत, प्राकृत शब्द को स्थूल शब्द बतलाया गया है :-

"स्थूलांश्चैव प्रवक्ष्यामि यथावत्तान्निबोध मे । भेरीपटहशङ्खोत्थो मृदङ्गपणवोस्थित: ॥

वेणुगोमुखशब्दश्च मन्दलो दर्दुरो ध्वनि: । तन्त्रीवाद्यानि चित्राणि करवाद्यानि यानि च ॥

संयोगजवियोगोत्था: काष्ठपाषाणवारिजा: । अपभ्रंशोऽनुनासिक्य: संस्कृत: प्राकृतो रव: ॥"[30]

इसी प्रकार अन्य शैवागमों यथा - रुद्रयामलतन्त्र, नेत्रतन्त्र, विज्ञानभैरव, मालिनीविजयोत्तरतन्त्र में वाक्-तत्त्व से सम्बन्धी विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । इसके अलावा कुछ परवर्ती शैवतन्त्रों यथा महार्थमञ्जरी, शारदातिलकयन्त्र तथा शाक्तग्रन्थों यथा - योगिनीहृदय एवं कामकलाविलास में भी वाक् तत्त्व के विविध पहलुओं पर विस्तार से विचार किया गया है ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची :-

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमार्शिनी (१-२ भाग) सम्पादक- मुकुन्दरामशास्त्री, काश्मीर-संस्कृत-ग्रन्थावली, ग्रन्थसंख्या-२२/२३, श्रीनगर, १९१८, १९२१.

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमार्शिनी (भास्करीसंवलिता), ज्ञानाधिकारात्मको प्रथमो भागः, अभिनवगुप्तपादाचार्यः, प्रधानसम्पादकः-प्रो. रामचन्द्र द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण, दिल्ली, १९८६.

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमार्शिनी (१-३ भाग), अभिनवगुप्तपादाचार्य, सम्पादक-मधुसूदन कौल, काश्मीर-संस्कृत-ग्रन्थावली, ग्रन्थसंख्या-६०/६२/६५, श्रीनगर, १९३८, १९४२, १९४३.

काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएँ, नवजीवन रस्तोगी, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा.लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, २००२.

काश्मीरीय शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र ('शिवसूत्र', 'स्पन्दसूत्र' एवं 'शक्तिसूत्र' समन्वित), डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, २००९.

तन्त्रालोकः (१-८ खण्डः) अभिनवगुप्तपादाचार्यः, श्रीजयरथकृतविवेकटीकासहितः, सम्पादकौ- डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, डॉ. नवजीवन रस्तोगी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८७.

परात्रिंशिका, महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त की विवृति सहित, व्याख्याकार-आचार्य नीलकण्ठ गुरुटू, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९८५.

---

[28] श्रीमालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, ३.१२

[29] स्वच्छन्दतन्त्र, १२.१५-१७

[30] वही,१२.१८-२०

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ('तत्त्वबोधिनी'हिन्दीव्याख्योपेतम्), महामाहेश्वराचार्यराजानकक्षेमराज, व्याख्याकार एवं सम्पादक-डॉ. शिवशङ्कर अवस्थी शास्त्री, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पञ्चम संस्करण, २००८.

महार्थमञ्जरी (स्वोपज्ञपरिमलाख्यव्याख्योपेता), श्रीमाहेश्वरानन्दः, सम्पादकः- पण्डितव्रज-वल्लभद्विवेदः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, १९९२.

मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, डॉ. परमहंसमिश्रविरचित-'नीरक्षीरविवेक'-भाषाभाष्येण कुल-पतेः प्रो. वेम्पटिकुटुम्बशास्त्रिणः प्रस्तावनया च विभूषितम्, सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी, २०६७ तमे वैक्रमाब्दे.

मालिनीविजयोत्तरवार्तिक, अभिनवगुप्त, सम्पादक-मधुसूदन कौल, काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि, संख्या-३१, श्रीनगर, १९१६.

विज्ञान भैरव, व्या. - व्रजवल्लभ द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण, २०१०.

शिवदृष्टि, सोमानन्द, उत्पलदेवकृत वृत्ति सहित, सम्पादक- डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी, वाराणसेय संस्कृत संस्थान, जगतगंज, वाराणसी, प्रथम संस्करण-१९८६.

स्वच्छन्दतन्त्रम् (१-२ भाग), सम्पादक एवं व्याख्याकार- आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी, चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी,प्रथम संस्करण,२००४.